माता कस्तूरबा

बाबूराव जोशी

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी – 221001

जगदम्बा कस्तूरबा

सन् 1944! फरवरी के अन्तिम सप्ताह की बात! गांधीजी 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सिलसिले में पूना के आगाखाँ महल में कैद थे। आगाखाँ महल के बन्द दरवाजे एकाएक खुले — गांधीजी और उनके साथी राजनैतिक बन्दियों को मुक्त करने के लिए नहीं, गांधी-परिवार को अन्दर आने देने के लिए। राष्ट्रमाता कस्तूरबा का स्वास्थ्य काफी गिर गया था। ऐसा लगता था कि अब अन्त समय निकट आ गया है। बा के अन्तिम दर्शन के लिए गांधी-परिवार पूना के एक स्थान में इकट्ठा हो गया था। जिन्हें मुलाकात या दर्शन की इजाजत नहीं मिली थी, वे पर्णकुटी में प्रतीक्षा कर रहे थे। 22 फरवरी के दिन जब कि हिन्दू लोग शिवरात्रि का पर्व मना रहे थे, बा बापू की गोद में सिर रखकर स्वर्ग सिधार गयीं ! इससे मंगल-मृत्यु और क्या हो सकती थी! बा धन्य हो गयीं!

दूसरे दिन अस्थियाँ इकट्ठी करनी थीं। परिवार के लोग इसी के लिए पूना में जमा हुए थे। अस्थियाँ इकट्ठी करते हुए लोगों ने बड़े आश्चर्य से देखा कि बा के हाथ की चूड़ियाँ ज्यों-की-त्यों पड़ी हैं। चमत्कारों में विश्वास न करनेवाले लोग भी चकित रह गये। बापू इस अवसर पर मौन ही रहे। उन्होंने केवल इतना ही कहा, ''वह जगदम्बा थी।''

उस दिन प्रार्थना समाप्त हो जाने पर भी उठने का मन नहीं हो रहा था। परिवार और बा की पुरानी बातें—जिनमें बचपन से लेकर मृत्यु तक के उनके संस्मरण थे—सुना रहे थे। इन संस्मरणों ने बा की एक मनोरम मूर्ति ही खड़ी कर दी थी।

''जन्म-पत्री में मंगल होने का अर्थ क्या है?'' पोरबन्दर (गुजरात) के गोकुलदास मकनजी के बाड़े की ओसारी में लगे हुए पलने पर बैठी हुई 6-7 बालिकाएँ बातें कर रही थीं।

''दादीजी कहती थीं कि कबा गांधी के मोहन की जन्म-कुण्डली में कहीं मंगल तो नहीं है, यह जरा ध्यान से देख लेना।''

''उसमें देखना क्या है ?''

''यदि जन्म-कुण्डली में मंगल होता है, तो पत्नी जल्दी मर जाती है। पहले उसकी सगाई दो जगह हो चुकी है और वे दोनों ही मर गयी हैं।''

''अच्छा, तो फिर अब क्या होगा ?''

चिन्ता की कोई बात नहीं है। वजूबा ने दादीजी से कहा था कि यदि उसकी जन्म-कुण्डली में मंगल हुआ तो मेरी कस्तूर की जन्म-कुण्डली में अष्टपुत्रा सौभाग्यवती होने का योग है। मंगल हुआ भी तो वह कस्तूर के ग्रहयोग के कारण प्रभावहीन हो जायेगा।''

इन दिनों कबा गांधी का वह मोहन इस परिवार की चर्चा का विषय बन गया था। कोई कहता, उसके विवाह के बहुत अच्छे योग हैं, तो कोई कहता, उसके साथ जिन दो लड़कियों की सगाई हुई थी, वे दोनों ही मर गयीं। अतः उसके साथ जीवनभर के लिए विवाह-बन्धन में बँध जाना बड़ा कठिन ही है। यह कौन जानता था कि उसे मंगल था भी या नहीं? लेकिन था वह सुन्दर और अच्छे परिवार का। जन्म-पत्री के अनुसार उसे जो दिमाग मिला था, उससे सामंजस्य बैठाकर उसके साथ जीवन बिताना सचमुच बड़ा कठिन था।

कस्तूरबाई का बारहवाँ वर्ष पूरा हुआ और तेरहवाँ लगा। अब परकुलपोलके की जगह चार हाथ की साड़ी आयी। वह प्रतिदिन वजूबा के साथ हवेली (वैष्णव मन्दिर) जाने लगी। मंगलवार, शनिवार और एकादशी के व्रत रखने लगी। माँ रसोई-घर का थोड़ा-थोड़ा काम भी करवाने लगी। उसे अब ससुराल जो जाना था। पीहर में तो सब कुछ अच्छा था। परिवार में भाई-बहन ये दो ही बालक थे। कस्तूरबाई बड़ी और माधवदास छोटा। इनके अतिरिक्त माता और पिता—चार व्यक्तियों का छोटा-सा परिवार। न कोई चिन्ता और न फिक्र।

लेकिन ससुराल? कबा गांधी का परिवार तो बहुत बड़ा था। फिर दीवान का घर। पोरबन्दर का बाड़ा तो आसपास प्रसिद्ध था। राजकोट में भी विशाल चार चौकवाला बाड़ा था। देवर-देवरानी, ननद-जमाई, सास-ससुर अच्छा भरा-पूरा परिवार था। यदि करस्तूरबाई को अभी से काम काज करने की आदत न हुई तो ससुराल में बड़ी परेशानी हो सकती थी।

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

माँ कहतीं: ''ससुराल में काम के मारे कमर टेढ़ी हो जायेगी।'' वह मन ही मन सोचती—''क्या मालूम मोहनदास की जन्म-पत्री का मंगल उसे इस बड़े परिवार में जाने भी देगा या नहीं।'' लेकिन यह बात कहे किससे? उसे तो नीची गर्दन करके काम करते रहने की आदत डालनी थी।

जैसे ही तेरहवाँ वर्ष समाप्त होने लगा, विवाह का मुहूर्त निकल आया। गहने और कपड़े खरीदे जाने लगे, बड़ी और पापड़ बनने लगे। पास-पड़ोस और जाति-बिरादरी की स्त्रियाँ जमा होने लगीं, मंगल-गीत गाये जाने लगे। दोपहर होते ही बड़ी-पापड़ में स्त्रियाँ जुट जातीं और संध्या होते ही गीत और गरबा-नृत्य शुरू हो जाता। रोज बताशे बाँटे जाते। शरमाना, मन ही मन मुसकाना, नये-नये कपड़े पहनना—बड़ा आनन्द और उल्लास था। कस्तूरबाई को लगता कि कैसा आनन्द है। विवाह और ससुराल को लोगों ने व्यर्थ ही हौआ बना रखा है।

विवाह का दिन नजदीक आने लगा। प्रतिदिन यही चर्चा होती कि बारात आज आयेगी, कल आयेगी। लेकिन विवाह के दिन से एक सप्ताह ही शेष रह गया और बारात का कोई पता नहीं था।

कबा गांधी के यहाँ सन्देश पहुँचाया गया, सन्देशवाहक दौड़ाये गये। कस्तूरबाई के माता-पिता की चिन्ता बढ़ गयी। मण्डप के पास से आता-जाता कोई-न-कोई व्यक्ति बुदबुदाने लगता: ''यह विवाह का योग बड़ा विचित्र है।'' जब कस्तूरबाई को यह सुनायी दे जाता तो वह रूआसी हो जाती। लेकिन वह न तो प्रकट रूप से कुछ कह सकती थी, न रो ही सकती थी। एक शब्द भी बोलना अपराध था। आवश्यक हो जाय तो चुपचाप सामने रखे हुए कपड़े पहन लेना, गहने पहन लेना और आधा चेहरा घूँघट से ढँककर दिन बिता देना, यही उसका प्रतिदिन का कार्यक्रम था। रात्रि के अँधेरे में उसका बाल-मन सोचता—क्या एकमात्र मेरे ही विवाह का ऐसा योग है? यहाँ तो एक ही मण्डप के नीचे तीन-तीन विवाह होनेवाले हैं। क्या उनकी तकदीर अच्छी नहीं है?

आखिर प्रतीक्षा और चिन्ता के दिन बीते। वह प्रतीक्षित बारात एक दिन आ पहुँची। अब विवाह का डेढ़ ही दिन बाकी था। बारातवालों ने बताया कि ठाकुर साहब की ओर से इजाजत न मिलने के कारण ही विलम्ब हो गया था। इजाजत मिलते ही वे लोग बारात के विशेष घोड़ेवाले ताँगे दौड़ाते हुए आये। दौड़ भी ऐसी कि अन्तिम मुकाम के आते-आते समधी का ही घोड़ा अड़ गया। ताँगेवाला भी गुस्से में आ गया। उसने घोड़े को बहुत पीटा। बस, फिर क्या था? घोड़ा बेकाबू हो गया और ताँगा उलट गया।

समधी मानो लड़ाई के मैदान से ही आ रहे हों। हाथ, पैर, सिर सब में पट्टियाँ बँधी हुई थीं। अब तो बचे-खुचे उत्साह और आनन्द पर भी पानी फिर गया।

दोनों पक्षों की स्थिति अच्छी थी। किसी बात की कमी नहीं थी। लेकिन विवाह का काम उतने उल्लास और आनन्द से सम्पन्न नहीं हुआ। यह लोग ठहरे काठियावाड़ी। किसी के मुँह से एक भी अप्रसन्नता और असन्तोषसूचक शब्द नहीं निकला। किसी के चेहरे पर एक भी बल न पड़ा, किसी के चेहरे पर दुख या शिकायत की रेखा नहीं उभरी। दाँत तो ऐसे, जैसे बताशे हों। बड़े ही मधुरभाषी। स्वयं कबा गांधी जख्मों पर पट्टी बाँधे विवाह के जुलूस में शामिल हुए। जुलूस समाप्त होने पर दूसरों का सहारा लेकर अपने स्थान पर आ बैठे और तब उठे, जब तीनों कन्याओं के दान का जल उनके हाथों पर पड़ गया।

पिता की उपस्थिति और अग्नि-ब्राह्मण की साक्षी में स्त्रियों के बेसुरे गीत तथा बच्चों के रोने-चिल्लाने के होहल्ले के बीच चाँदी की थाली में घी से सराबोर कसार का कौर देते हुए कस्तूरबाई ने उस चेहरे की थोड़ी-सी झलक देखी, जिसके साथ उसके जीवन की गाँठ बँध रही थी। देखने में भी तो सुन्दर होते? लेकिन उस चेहरे में भयभीत होने जैसा कुछ भी नहीं था।

विवाह सम्पन्न हुआ और कस्तूरबाई को लेकर बारात लौट गयी। राजकोट के दीवन का बड़ा-सा बाड़ा और उसके अनुरूप घर भी काफी बड़ा। घर में सास ही कर्ता धर्ता थीं। उनके हाथ के नीचे बड़ी जेठानी थीं। छोटी ननदें थीं। छोटी बहू पर घर की कोई जिम्मेवारी डालने का अभी प्रश्न नहीं था। धीरे-धीरे सास के अनुशासन में काम का श्रीगणेश हुआ। दिन आनन्द से बीतने लगे।

घर का वातावरण बड़ा अच्छा था। दिन तो अच्छी तरह बीत जाता, लेकिन रात हुई कि जैसे वनवास ही शुरू हो जाता। मोहनदास राजकोट के हाईस्कूल में पढ़ रहे थे। रात को उनकी कटकट शुरू होती — ''तुझे गुजराती नहीं आती। न ठीक तरह लिख सकती है, न पढ़ ही सकती है।''

''क्या घर के काम-काज में उससे कोई बाधा पड़ती है?'' कस्तूरबाई अचूक तर्क उपस्थित करतीं।

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

''तू तो मूर्ख है।''

''रहने दो।'' वह पुटपुटाती।

''तुझे पढ़ना चाहिए। मैं पढ़ाऊँगा तुझे।'' लेकिन दिनभर पाठशाला में पढ़ते-पढ़ते थककर चूर हुआ 13 वर्षीय बालक और दिनभर के घरेलू काम-काजों से थकी हुई वह नववधू दोनों ही पढ़ने-पढाने का काम भलीभाँति चला नहीं पाये। न तो वह नियमित रूप से पढ़ा पाया, न वह ही नियमित रूप से पढ़ सकी। हाँ, खटपट ज्यों की त्यों चलती रही। एक दिन फिर वही—''तू मूर्ख है।''

''रहने दो।''यह चर्चा चल ही रही थी कि किसी ने नीचे का दरवाजा खटखटाया।

''जा, पूछ कौन है और दरवाजा खोल दे।'' बात बहुत साधारण थी, लेकिन अँधेरे में अकेले नीचे जाकर दरवाजा खोलना और वह भी एक वधू के लिए साधारण नहीं था। फिर भी कस्तूरबाई ने हिम्मत की। उसने सुन रखा था कि 'राम-राम' कहने से भूत भाग जाते हैं। वह उठी और 'राम-राम' रटते हुए उसने कमरे की साँकल खोल दी। लेकिन अब अँधेरे में जीने से उतरकर अकेले ही नीचे जाना था। जीना उतरने का साहस न हुआ। कुछ क्षण के लिए ठिठक गयी।

''तू कहती थी न कि न पढ़ने से कोई बाधा नहीं होती? जा, अँधेरे में से जा नीचे।''

''हाँ, जाती हूँ। उसमें है क्या? लेकिन बाहर कोई पुरुष हुआ और मैंने दरवाजा खोला तो! मैं तो आगे जाकर दिखा देती हूँ कि मैं अँधेरे में जाने से डरती नहीं। लेकिन नीचे आकर तुम ही दरवाजा खोलना।''

कस्तूरबाई खट-खट जीना उतरकर सचमुच ही नीचे पहुँच गयी। उसे अँधेरे से भय नहीं लगा। लेकिन उसके पीछे जीना उतरते हुए मोहनदास को अवश्य लगा कि यह मुझसे श्रेष्ठ है।

मोहनदास सोचते—''पत्नी अपने से उम्र में कुछ बड़ी, स्वभाव से निर्भय, देखने में दस स्त्रियों में अलग दिखायी देनेवाली—ये तो कोई अच्छे लक्षण नहीं हैं। 'जूती पैर में और पत्नी वश में ही रहनी चाहिए।''

दीवान का प्रतिष्ठित परिवार। रिश्तेदारों या जान-पहचान के लोगों में कहीं कोई व्याह-शादी या अन्य कोई अवसर आता तो घर की बहू-बेटियों को दीवान साहब की प्रतिष्ठा के अनुरूप गहनों-कपड़ों से सजकर जाना पड़ता। उन सबमें कस्तूरबाई अपनी सुन्दरता के कारण अलग दिखायी पड़ती। वह ठिंगनी, शान्त और सुकुमार मूर्ति देखने में ऐसी लगती, जैसै किसी मूर्तिकार ने गढा हो। मोहनदास को यह सब अच्छा न लगता। उन्होंने मन-ही-मन कहा, किसीकी आँख में बसकर क्या करना है ? अब उसका पति जाग्रत हो गया है कस्तूरबई से पूछा ''तुम सदा बाहर क्यों जाती रहती हो?''

''यह भी कोई बात है ? यह तो परिवार की रीति है, व्यवहार है, सासजी जहाँ जाने को कहती हैं वहाँ जाना पड़ता है। यदि हम लोगों के घर नहीं जायेंगे, तो हमारे घर कौन आयेगा ?''

हमें क्या जरूरत है कि कोई हमारे घर आये?'' क्रोधी पति ने कहा।

कस्तूरबाई को सूझा नहीं कि क्या उत्तर दे। उन्हें चुप रहना ही ठीक प्रतीत हुआ। दूसरों के घर जाना चाहिए या नहीं इस विवाद को उनके मौन ने समाप्त कर दिया।

मौन ने प्रकरण तो समाप्त कर दिया, पर बोल-चाल भी बन्द हो गयी। बाहर जाना-आना वैसे ही चलता रहा। सासजी से कैसे कहती कि उनको बाहर जाना पसन्द नहीं है? फिर यहाँ ससुराल में तो सबकी तूती अलग-अलग बजती है। किन-किन की मर्जी का ध्यान रखा जाय? अच्छा तो यही है कि सबकी बातें सुन ली जायँ और जितना करना हो उतना चुपचाप बिना बहस किये किया जाय।

कस्तूरबाई जब उलटकर कोई जवाब ही नहीं देती थी, तो प्रायः कोई विवाद ही खड़ा नहीं होता था। एक उपाय था कि मोहनदास अपनी माँ से जाकर कहते कि कस्तूरबाई को बाहर न जाने दे। उन्हें उसका बाहर जाना पसन्द नहीं है। लेकिन ऐसा कहने का साहस कहाँ था? और माँ उसे मान ही लेतीं, इसका भी भरोसा कहाँ था ? बस, अन्दर-ही-अन्दर तनाव बढ़ रहा था। अब मोहनदास को हाईस्कूल में एक नया मित्र मिल गया। उम्र में उनसे बड़ा था। उसे संसार का भी कुछ अधिक अनुभव था। उसने इस बड़े घर के शर्मीले और संकोची लड़के की मनोभावनाओं को ताड़ लिया। इसे फुसला लेना कठिन नहीं था। बोला,''हम लोग घास-पात खाकर ही भेड़-बकरी बन गये हैं। हमसे अपने मुँह पर ही मक्खी तक उड़ायी नहीं जाती। इसलिए हमको ईश्वर और धर्म का मिथ्या विचार त्याग देना चाहिए। यदि हमने ऐसा नहीं किया तो हम कुछ भी नहीं कर सकेंगे। जब हम अपनी मदद न कर पायेंगे, तो देश और समाज की क्या मदद करेंगे? हमारी कायरता मिटाने का और क्या उपाय है?''

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

इस गुरु ने मोहनदास के मन की चाबी बड़ी कुशलता से घुमा दी। मोहनदास भी सोचने लगे ''हमारी कायरता और मूर्खता तो मिटनी ही चाहिए। लेकिन उसे मिटाने का उपाय क्या है?'' इस मित्र ने उपाय सुझाया : ''हमें मांस खाना चाहिए। इससे हमारी बाहुओं में ताकत आयेगी। देखो न एक गोरा साहब हम जैसे दस के लिए भी भारी पड़ता है। आखिर ऐसा क्यों है? क्या तुम जानते हो उसका भोजन क्या है? वह अधिकतर मांस-मछली ही खाता है और हम तो भेड़-बकरी की तरह घास-पात खानेवाले ठहरे। यदि ऐसा ही चलता रहा तो हम, हमारे बच्चे, हमारा देश, सब पापी व्यक्तियों के पितरों की तरह ऐसे ही पड़े रहेंगे। थोड़े से अँधेरे में जाने से हम काँपने लगते हैं।''

उसने ठीक जखम पर ही उँगली रखी थी। मोहनदास उसके बहकावे में आ गये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अपनी कायरता दूर करने के लिए मांस-मछली खाना चाहिए। यह सोचने का अवसर ही किसे था कि अँधेरे में सीढ़ी उतरकर नीचे जानेवाली कस्तूरबाई भी तो शाकाहारी ही थी। वस्तुतः जब एक बार सिर फिर जाता है, तो सारासार विवेक कहाँ रहता है?

अब घर देर से आना प्रारम्भ हुआ। बिना कुछ खाये ही ऊपर दूसरी मंजिल पर जाकर सो जाते। कोई पूछता तो कहीं खा लेने का बहाना बना देते। अपना काम पूरा करके दूध का प्याला लेकर कस्तूरबाई ऊपर पहुँचती। चिन्तित होकर पूछती : ''क्या सिर में दर्द है? दबा दूँ?'' वे गुस्से से चिल्लाते : ''मुझे कुछ नहीं हुआ है। सो जाओ चुपचाप।'' लेकिन उनके मुँह से निकलनेवाली बदबू छिप न पाती थी। लक्षण कुछ अजीब-से दिखाई देते थे। रातभर आँख-से-आँख न लगती। ऐसे-ऐसे विचार मन में आते, जैसे दुश्मन के मन में भी नहीं आते। उनकी कल्पनाएँ भूत की तरह सामने नाचती रहतीं। वह जान गयी कि इन्हें जो न खाना चाहिए था, वही खा लिया है और जो न करना चाहिए था, वही कर लिया है। यह छोटी बालिका आँखों के आँसू पोंछते-पोंछते पूरी-पूरी रात बिता देती। वह अपने मन पर यही बोझ लिये रहती थी कि इससे कब और कैसे मुक्ति मिलेगी।

इधर घर में ससुरजी बीमार। सासजी उनकी सेवा में लगी रहती थीं। जेठानी को भक्ति-भावना और पूजन से फुर्सत नहीं मिलती थी। घर के कामकाज का बोझ कस्तूरबाई पर ही पड़ता जा रहा था। कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था। सुबह होते ही जी मिचलाने लगता और रह-रहकर उल्टियाँ होतीं। अन्न का एक भी कण पेट में न ठहरता। ननदें कहतीं : ''तुम्हें कुछ महीने चढ़ गये हैं।'' लेकिन इसका अर्थ क्या है, कस्तूरबाई को समझ में ही नहीं आता था। उसे लगता दिन का क्या, वे तो देखते ही देखते चढ़ जाते।

लम्बी बीमारी के बाद एक दिन ससुरजी चल बसे। उनकी मृत्यु से इस बड़े प्रतिष्ठित परिवार का छत्र धराशायी हो गया। सास का मन संसार से विरक्त हो गया। जेठानी पहले ही भजन-पूजन में लगी रहती थीं। अब भी उनकी दिनचर्या में कोई अन्तर नहीं पड़ा। चचेरी जेठानी, देवरानियों और ननदों की मदद से सूतक के दिन और डेढ़ महीने तक चलनेवाला कार्यक्रम का पसारा समेटते-समेटते तो बड़ी मुसीबत हो गयी। कमर में दर्द होने लगा और कभी-कभी तो आँखों से आँसू टपक पड़ते। जी घबराने लगता। माँ के शब्द याद आ जाते कि ससुराल में काम करते-करते कमर टेढ़ी हो जायगी।

प्रसूति जैसे-तैसे निपटी। नव शिशु जन्म के पहले ही स्वर्ग सिधार गया। कस्तूरबाई जैसे-तैसे बच तो गयी, लेकिन कोमल शरीर जर्जर हो गया। और मन ! वह तो चिन्ता से घुटा जा रहा था। जब वह खटिया पर अकेली होती तो तकिया आँसुओं से तर हो जाता था।

ज्यादा बातचीत पसन्द न करनेवाली और चुपचाप काम में लगी रहनेवाली पुरानी स्त्रियाँ अपनी पारिवारिक बातों से बेखबर नहीं रहतीं। पुतलीबाई स्वभाव से मौन-मूक रहकर अपना काम करनेवाली महिला थीं, किन्तु पति-वियोग ने उन्हें और गम्भीर बना दिया था। फिर भी उनकी दृष्टि से बहू की मानसिक चिन्ता छिप न सकी। बिना कुछ कहे हुए भी वे सतर्क दृष्टि से सब कुछ देख रही थीं।

हाईस्कूल परीक्षा पास होने पर मोहनदास के मामा, बड़े भाई तथा अन्य परिचित लोगों ने विचार किया कि उसे बैरिस्टर बनाया जाय। इसके लिए इंग्लैण्ड जाना पड़ता था। मोहनदास को जब यह बात मालूम हुई तो वह भी खुश हुआ। यदि कोई चिन्तित थी तो कस्तूरबाई ही। विदेश जाने की बातें सुन-सुनकर उसका दिल धक-धक करता रहता था। वे सोचतीं, अभी से ये आदतें हैं, तो विदेश में क्या होगा? जब तक ससुरजी थे तब तक तो धाक थी। छिपकर मांस खाने और उसका कर्ज चुकाने के लिए सोने का कड़ा काटकर टुकड़ा बेचने की बात तो इन्होंने स्वयं ही उनके सामने स्वीकार कर ली थी। उससे सारा प्रकरण अपने-आप ही समाप्त हो गया था। लेकिन विदेश में तो घर का कोई बन्धन नहीं रहेगा। न कोई कहनेवाला, न सुननेवाला। कस्तूरबाई बड़ी परेशान थी। लेकिन मन की यह बात आखिर कहे भी किससे?

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

एक दिन पुतलीबाई पूजा-अर्चा समाप्त करके पूजागृह में बैठी हुई जप कर रही थीं। घर की यह पुरानी परम्परा थी कि घर का प्रत्येक व्यक्ति बाहर जाने के पूर्व पूजागृह में आकर भगवान् को प्रणाम करता था। मोहन को बाहर जाना था। वह प्रणाम करने आया। माँ ने उसे रोका।

''मोहन, जरा इधर तो आ बेटा। तुझसे कुछ बातें करनी हैं।'' मोहन माँ के सामने आकर बैठ गया। माँ प्रायः अधिक नहीं बोलती थीं, लेकिन उनके मुँह से जो भी निकलता था, वह कबा गांधी के घर में बड़े आदर के साथ मान्य किया जाता था।

''सुना है, तू विलायत जानेवाला है।''

''आप बड़ों की इजाजत हो तो अवश्य जाना चाहता हूँ।''

''क्या वहाँ जाने से मनुष्य कुछ अधिक भला बनता है?''

''हाँ माँ, वहाँ जाकर बड़ी परीक्षा पास की कि खूब मान-सम्मान मिलता है। अच्छा काम भी मिल जाता है। न मिले तो वकालत तो अच्छी चल सकती है। हमारे परिवार में अच्छे दिन आ सकते हैं।''

''यदि ऐसा है तो जा।'' माँ ने विरक्त भाव से कहा। ''लेकिन देख, एक बात ध्यान में रखना। मैं संसार में रहूँ या न रहूँ विदेश में भी वैष्णवों के आचार को मत छोड़ना। मांस-मछली मत खाना, शराब मत पीना और परायी स्त्रियों का साथ मत करना। तुझे मेरी सौगन्ध है।''

दूसरी ओर के कमरे में खटिया पर लेटी हुई कस्तूरबाई यह सब सुन रही थी। उसको प्रसन्नता थी कि माँ ने वे ही बातें कहीं, जो वह चाहती थी। भगवान् की कृपा से आकाश नहीं फटा। यह उसकी अपार दया हुई।

मिस्टर मोहनदास करमचन्द गांधी बैरिस्टरी पास करने विलायत गये। वहाँ उन्होंने कानून का अध्ययन शुरू किया। इस बीच घर में कितने ही परिवर्तन हो गये। माता पुतलीबाई स्वर्ग सिधार गयीं। ससुर तो पहले ही चल बसे थे, अब सास भी नहीं रहीं। बहुत-से रिश्तेदार, जो उस समय इस घर में ही रह रहे थे, अब अलग हो गये। जेठजी घर के कर्ता-धर्ता बने, लेकिन जेठानी पहले से ही घर के काम-काज में रुचि नहीं लेती थीं। अब कस्तूरबाई पर ही सारे घर की जिम्मेदारी आ गयी। अब कस्तूरबाई का बचपन भी नाममात्र का शेष रह गया था। उसे घर का काम-काज जेठानी की मदद से चलाना था। जब भी आवश्यक होता, वह हाथभर का घूँघट निकाले हुए दरवाजे की ओट में खड़ी हो जाती और दो-चार शब्द बोल देती। स्त्रियाँ लज्जा और मर्यादा से दबी हुईं और पुरुषों की जबान पर काठियावाड़ी मिठास का ताला। किसके मन में क्या है, इसका पता लगाना ही कठिन हो जाता था।

बैरिस्टरी पास करके मोहनदास विलायत से लौटे। चेहरे पर तेजस्विता थी। मन में नया उत्साह था। ऐसा लगता था, जैसे अब बचपन चला गया है। कम बोलने की आदत भी अब कम हो गयी थी। अब तो दिमाग में नयी हवा प्रवेश कर गयी थी।

''अब तू बैरिस्टर की पत्नी है। यदि ऐसी ही अशिक्षित रही, तो कैसे चलेगा? गुजराती ही नहीं, तुझे तो अंग्रेजी भी सीखनी पड़ेगी।''

कस्तूरबाई ने सोचा था, इतने वर्ष बाद विलायत से लौटनेवाले पति के मुँह से अवश्य ही प्रशंसा के दो शब्द निकलेंगे। कहेंगे, तूने इतनी छोटी उम्र में ही घर की सारी जिम्मेवारी सँभाल ली। सब लोगों की मर्जी सम्पादन करते हुए गृहस्थी का काम भी माँ की ही तरह करना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन पति के मुँह में तो जन्मजात काठियावाड़ी मिठास भी नहीं थी। वह बोली : ''आप पढ़ाइये, मैं पढ़ूँगी।''

शीघ्र ही घर में पुस्तक आयी, स्लेट आयी, लेकिन कस्तूरबाई का मन तो संसार में रमा हुआ था और हाथ घर के काम-काज में। वह पुस्तक देखकर ही पण्डिता कैसे हो जाती ?

''तुझमें तो बुद्धि ही नहीं है। तू तो बुद्धिहीन है। कहे देता हूँ, ऐसी पत्नी से मेरा मेल नहीं बैठ सकेगा।''

''सुन लिया। यदि मुझसे मेल नहीं बैठाया जा सकता है, तो जाने दीजिये। सँभालिये अपना घर-बार।'' कस्तूरबाई सचमुच ही अपने पीहर चली गयी।

मोहनदास ने पहले तो सोचा—जाने दो। झंझट मिटी। लेकिन कस्तूरबाई के बिना कदम-कदम पर कठिनाई होने लगी। गृहस्थी की गाड़ी जैसे ठप हो गयी। मोहनदास को अन्दर ही अन्दर अपनी गलती खलने लगी। मन-ही-मन कहने लगे, नहीं, मुझसे भी कुछ भूल तो हुई है। पत्नी का एक-एक गुण याद आने लगा।

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

गोकुलदास मकनजी के यहाँ सन्देश भेजा गया और घर की मालकिन लौट आयीं। अब कटकट पहले की अपेक्षा काफी कम हो गयी।

विलायत से अभी-अभी लौटे थे। अतः मोहनदास समझते थे कि वे कानून के बड़े भारी पण्डित हो गये हैं। लेकिन जल्दी ही उनका यह भ्रम दूर हो गया। वकालत कुछ अच्छी चल नहीं रही थी। उन्होंने राजकोट छोड़कर बम्बई जाना तय किया। बम्बई तो एक बड़ा शहर है। गिरगाँव में रहने लगे। पहली मंजिल के तीन कमरों में ढाई व्यक्तियों की यह गृहस्थी रहने लगी। भरे घर में जिस उदारतापूर्वक खर्च करने की आदत पड़ गयी थी, उस कस्तूरबाई के लिए तो यह बम्बई का जीवन मानो परीक्षा का ही समय था। कौन चाने चौरासी के फेर से बची-बचायी सभी परीक्षाएँ उसे इसी जन्म में देनी थीं या और कुछ था?

यहाँ भी वकालत अच्छी न चल पायी। जेब में पैसे भी पर्याप्त नहीं थे। लेकिन कस्तूरबाई को इस अभाव और कठिनाई के जीवन में भी सुख का ही अनुभव हुआ। क्योंकि मोहनदास का स्वभाव अब बहुत कुछ बदल गया था। पहले प्रतिदिन एक-न-एक नयी बात खड़ी होती थी। अब भगवान् की दया से वैसा नहीं होता था।

बम्बई का खर्च पूरा न पड़ने से वापस राजकोट लौटने का निश्चय किया। बड़े जेठजी ससुरजी की जगह रियासत के दीवान बन गये थे। लेकिन रियासती काम ठहरा। बैरिस्टर साहब के दिमाग में यह बात बैठ गयी कि वे ठाकुर साहब को गुमराह करते हैं। ऐसे एक-दो अवसर आये, जिससे उनकी यह धारणा पुष्ट हो गयी। बैरिस्टर साहब को कायदे-कानून का तो ज्ञान था, लेकिन सच को झूठ और झूठ को सच करने की कला बिलकुल नहीं आती थी। यदि वे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते और अपने घर का ही खाते रहते, तब भी कोई कमी नहीं आनेवाली थी। लेकिन यह उन्हें पसन्द आता तब न ! प्रतिदिन एक नया काण्ड होता और वे घर में आये नहीं कि जैसे सब लोगों के गले में फाँसी का फन्दा ही पड़ जाता। 'आय एक पैसे की नहीं और फुर्सत एक घड़ी की नहीं' वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। जिस साहब के पास जेठजी का केस था, वहाँ अपने परिचय से कुछ किया जा सकता था, लेकिन उससे ही झगड़ा। घर की स्थिति बड़ी विचित्र हो रही थी। जेठजी सोचते थे कि इन्हें कहीं बाहर भेज दें। लेकिन भेजें भी तो कहाँ?

मोहनदास तो अपनी धुन में मस्त रहते थे। इन्हें यह मालूम नहीं होता था कि घर में क्या चल रहा है। लेकिन परिवार में जो कमाऊ नहीं होता, उसकी पत्नी की तो मुसीबत ही आ जाती है। प्रतिदिन सुबह-शाम तुलसी को जल चढ़ाकर प्रदक्षिणा करते हुए कस्तूरबाई आँख के आँसू पोंछती और भगवान् से प्रार्थना करती : 'हे भगवान्, यह वनवास समाप्त करो।' प्रति शनिवार को हनुमान्जी से और प्रति मंगलवार को गणेशजी से भी वह यही प्रार्थना करती। प्रतिदिन पूजागृह के भगवान् से भी वह कितनी ही प्रार्थना करती, कितनी ही बातें कहती।

एक दिन भोजन करते-करते बड़े जेठजी ने पूछा : ''अफ्रीका में अब्दुलकरीम जौहरी की फर्म का काम करने जा सकते हो?''

''क्या काम है?''

''उसके मुकदमे का काम है। वहाँ उसके कुछ मुकदमे चल रहे हैं। उसने बड़े-बड़े बैरिस्टर रखे हैं। यदि तुम उनकी मदद करोगे तो प्रतिमास 105 पौण्ड देंगे। आने-जाने और रहने की व्यवस्था भी वे ही करेंगे।''

''लेकिन—''

''लेकिन क्या? तुम्हें कोर्ट में जाकर पैरवी थोड़े ही करनी है? अनुभव बढ़ेगा और कुछ सीखने को भी मिलेगा।''

वस्तुतः वह वकालत या बैरिस्टरी नहीं थी। कारकुन जैसी नौकरी थी। मोहनदास ने उसे स्वीकार कर लिया। घर के लोगों ने चैन की साँस ली।

एक दृष्टि से कस्तूरबाई को भी यह ठीक लगा। लेकिन विदेश में इतनी दूर जाना और फिर स्वभाव इतना अजीब! खाने-पीने की परेशानी। कहे भी तो किससे? फिर सुननेवाला भी कौन था? ठीक है, वहाँ चले भी गये ! लेकिन वर्षभर टिक भी सकेंगे या नहीं? मराठी कहावत के अनुसार यह तो गाजर की पुंगी थी। जब तक बजे, तब तक सुनो।

लेकिन यह पुंगी बहुत दिनों तक बजती रही। दादा अब्दुल्ला को बैरिस्टर के रूप में उनका कितना लाभ मिला, यह तो केवल वे जानें, लेकिन उन्होंने और अफ्रीका के लोगों ने उन्हें आग्रहपूर्वक वहीं रख लिया। यह भी तय हो गया कि वहीं रहकर वकालत करेंगे और अब वहीं सपरिवार रहेंगे।

उस समय हरिलाल और मणिलाल दोनों बच्चे छोटे-छोटे थे। कस्तूरबाई और दोनों बच्चों को अफ्रीका जाने के लिए

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

अनेक प्रकार की परेशानी भरी तैयारियाँ करनी पड़ीं। बूट, मोजे, काँटे-चम्मच, पारसी ढंग के कपड़े—ऐसी वेश-भूषा, जिसकी एक वैष्णव-परिवार कल्पना ही नहीं कर सकता था। सब बातों में 'हाँ-हाँ' कहना पड़ा। 'ना' कहने के लिए कोई स्थान ही नहीं था। गाड़ी कुछ पटरी पर चलने लगी थी। मोहनदास के मन के विरुद्ध कुछ भी होता कि वे गुस्से से लाल हो जाते थे।

सारी तैयारियाँ पूरी हो गयीं। गांधी-परिवार जहाज में बैठा। बच्चों के लिए तो यह सब बड़े मजे की बात थी। केवल कस्तूरबाई का ही दिल धड़क रहा था। सोचती—क्या विदेश में कोई परिचित मिलेगा? वहाँ दिन कैसे बीतेंगे? यहाँ जो कुछ था, वही अच्छा था। वकालत तो देश में भी चल ही सकती है। यही होता कि समय कुछ ज्यादा लग जाता। भगवान् करे, कुछ ऐसा चमत्कार हो जाय कि जहाज पुनः बम्बई लौट आये।

कहावत है कि नकटी के विवाह में नौ सौ विघ्न। कुछ भी कहो, अच्छा तो कुछ होना नहीं था। समुद्र में भयंकर तूफान आया। जहाज काफी बड़ा और ऊँचा था, लेकिन ऊँची-ऊँची तरंगों के कारण वह ऐसा लग रहा था, जैसे उसमें कुछ वजन ही न हो। वह सन्तुलन खोकर लहरों के थपेड़ों से ऊँचा-नीचा होने लगा। बच्चे घबराकर माँ से चिपक गये। माँ ने उन्हें गोदी में ले लिया। वह भगवान् के चरणों के पास जाकर आँखें बन्द किये हुए मन-ही-मन बिलख पड़ी। पिता मोहनदास सामने की कुर्सी पर गुमसुम बैठे थे। दूसरे यात्री भी अपनी-अपनी दौड़-धूप में लगे थे। कोई घुटने टेककर प्रार्थना कर रहा था, कोई परेशान हो रहा था। एक-दो महिलाएँ चीख भी रही थीं। ऐसा लगता था कि अब गया सब कुछ—हो गया सब समाप्त।

लेकिन इस तरह सब समाप्त थोड़े ही होनेवाला था। तूफान शान्त हुआ। जहाज स्वाभाविक गति से चलने लगा। इतना तूफान आया, लेकिन जहाज दिशा भूलकर बम्बई नहीं लौटा। आया तो अफ्रीका ही। डरबन बन्दरगाह दिखाई दिया। जहाज ने लंगर डालकर पीला झण्डा फहरा दिया। हालाँकि बम्बई में उन दिनों कोई संक्रामक रोग नहीं था, फिर भी वहाँ की बीमारी यहाँ न आ जाय यह सावधानी रखने के लिए जहाज को समुद्र में ही खड़ा रखा गया।

इस प्रवास में कस्तूरबाई का मन बहुत अशान्त हो गया था। यही इच्छा बलवती हो रही थी कि भले ही अफ्रीका में अपना मकान न हो, फिर भी कहीं ठिकाने से तो लगें। उधर जहाज के यात्री आपस में फुसफुसा रहे थे : ''यह गांधी है न? इसी के कारण जहाज को रोक दिया है।'' कस्तूरबाई का मन आशंका से भर गया। सोचने लगी, यह झगड़ा क्या बला है?

तीसरे दिन दादा अब्दुल्ला के गोरे वकील लेटन साहब जहाज पर आये। दूसरे यात्रियों को जाने की इजाजत मिल गयी थी। लेकिन डरबन के सरकारी अधिकारियों को आदेश था कि 'गांधी की जान का खतरा है। उसे जाने न दिया जाय।'

यह रहस्य क्या है? कुछ समझ में नहीं आता था। लेटन साहब ने जहाज के कप्तान से चर्चा करके बाबा रुस्तमजी की गाड़ी में कस्तूरबाई और बच्चों को तो भेज दिया, लेकिन साहब और गांधीजी वहीं रुक गये। बोले : ''तुम आगे जाओ। हम पीछे से आते हैं।''

मुकाम पर पहुँचकर कस्तूरबाई ने स्नान किया। सामान यथास्थान जमाया। बच्चों को भोजन कराया। वे अब गांधीजी की राह देखने लगीं।

एकाएक रास्ते पर कुछ हो-हल्ला सुनाई दिया। बाहर आकर देखा। गांधी का नाम लेकर गोरे लोग हजारों की संख्या में जमा थे। वे घातक नारे लगा रहे थे। बार-बार गांधी का नाम सुनाई देता था। बड़ी परेशानी की बात थी। समझ में नहीं आ रहा था कि यह नयी मुसीबत कहाँ से आ गयी? काफी समय बाद वे आये। सिर पर पगड़ी नहीं। सारे शरीर पर गन्दगी। पिटाई के कारण सारा शरीर नीला पड़ गया था। पुलिस से घिरे हुए थे। क्या जाने भाग्य में क्या लिखा था? विदेश, पराये लोग और गोद में दो छोटे-छोटे बालक।

जहाज पर एक पारसी डॉक्टर से परिचय हो गया था। वह पास ही रहता था। वह और मकान मालिक रुस्तमजी दोनों ही बड़ा स्नेह रखते थे। उन दोनों का बड़ा सहारा था। बेचारे पारसी डॉक्टर आये। जो सड़े हुए अण्डे गांधीजी पर फेंके गये थे, उनकी गन्दगी साफ की। जख्मों की मरहम पट्टी की और दवा दी। लेकिन जब घर में यह सब हो रहा था, तब बाहर जैसे कुरुक्षेत्र मचा हुआ था। 'गांधी को बाहर लाओ, नहीं तो मकान जला देंगे। गांधी को इस पासवाले मकान पर फाँसी लगाओ।' इसी प्रकार की कुछ ऊलजलूल बातें वे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे।

पुलिस सुपरिंटेंडेंट भीड़ का मुकाबला कर रहे थे। वे उनसे बातें करके, उन्हें आश्वासन देकर समय गुजार रहे थे। वे अन्दर आये। उनके साथ काम करनेवाले एक आदमी ने अपने कपड़े उतार दिये। सुपरिंटेंडेंट ने सुझाया कि 'ये कपड़े पहनकर यहाँ से निकल जाइये।' गांधीजी एक भी शब्द नहीं बोले। सामने देखने का भी अवकाश कहाँ था? सिर पर मनभर वजन का

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

पीतल का टोप पहना, मार से नीले पड़े हुए स्थानों पर खाकी रंग की पट्टियाँ बाँधीं और उन विरोधी लोगों की भीड़ में से धड़कते हुए हृदय से बाहर निकल गये। बेचारी कस्तूरबाई भगवान् से अनेक मनौतियाँ करती हुई खड़ी रहीं। उनकी आँखों का पानी सूख गया था। मन जैसे चेतनाशून्य हो गया था और बोलने की शक्ति जैसे समाप्त हो गयी थी। उसके मन में एक ही विचार घूम रहा था : 'हे भगवन्, इन्हें बचा।' कुछ समय बाद लोग घर में घुसे। उन्होंने गांधी की तलाश में घर का कोना-कोना छान डाला। जब उनका कोई पता न चला तो वे लौट गये। ईश्वर की कृपा थी कि रुस्तमजी का मकान जलने से बच गया और गांधीजी अच्छी तरह पुलिस-स्टेशन पहुँच गये।

चार दिन बाद वे घर आये। अब वातावरण शान्त हो गया था। अफ्रीका में गोरे लोगों का एक अलिखित कानून था कि काला आदमी, चाहे वह कितना ही योग्य क्यों न हो, पढ़ा-लिखा क्यों न हो, धनी-मानी भी क्यों न हो, उसे कुली की ही तरह रहना चाहिए। गांधीजी ने इसी कानून का विरोध किया था। यही गोरों की नाराजगी का कारण था। लेकिन इसीलिए वहाँ के भारतवासी उनसे बहुत प्रेम करने लगे थे।

अब घर की व्यवस्था अच्छी हो गयी। वकालत अच्छी चलने लगी थी। अपने पति की कीर्ति और कर्मठता की प्रतीति नये रूप में हुई। मानो कस्तूरबाई की मनौतियाँ सारे देवताओं ने मान लीं। नये ढंग से रहने की आदत भी होती जा रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे वनवास समाप्त हो गया। लेकिन वैसा हुआ कहाँ?

अब एक नयी बात शुरू हुई। बैरिस्टर साहब ने ऑफिस के एक व्यक्ति को घर पर रहने के लिए बुलाया। वह छोटी जात का था। वह रहने लगा, यहाँ तक तो ठीक था। लेकिन यहाँ तो कोई मर्यादा ही नहीं थी। उसने रात के समय कमोड का उपयोग किया। हट्ठा-कट्ठा आदमी था। 'क्या उसे स्वयं कमोड साफ नहीं करना चाहिए था? लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। एक धनी व्यक्ति की पुत्री, दीवान की पुत्र-वधू और बैरिस्टर की पत्नी क्या इतना नीचा काम करे? घर में वैष्णव-परम्परा का पूजा-पाठ। लेकिन क्या उसके भाग्य में ऐसा ही काम लिखा है? आँखें छलछला आयीं।

''तू रहने दे, मैं साफ करता हूँ।''

''लेकिन उसका कमोड उसीको साफ क्यों नहीं करना चाहिए?''

''यह प्रश्न हमारा नहीं है। मैं कर दूँगा।''

''तो जाने दीजिये। मैं ही साफ कर देती हूँ। यह भी मेरे ही भाग्य में लिखा था।''

''देख, इस तरह रोते-रोते काम करने की आवश्यकता नहीं है।''

''और ऊपर से यह?''

''सिर ऊँचा करके ऐसा न बोल। मेरे घर में ऐसा नहीं चलेगा।''

''हाथ जोड़ती हूँ तुम्हारे और तुम्हारे घर को।'' वह पहले कभी इतनी त्रस्त नहीं हुई थी।

''अच्छा तो निकल जा घर से।'' क्रोधावेश में बैरिस्टर साहब ने दरवाजा खोला और बाहर निकालने के लिए हाथ पकड़ लिया।

शोकावेग में कस्तूरबाई थर-थर काँपने लगी। उसके गोरे-गोरे गालों पर से आँसुओं की गंगा-यमुना बह निकली। उसने अपने हाथ छुड़ा लिये। उसकी आवाज काँप रही थी। जैसे-तेसे मुँह से निकला : ''तुमने तो सारी लाज-शरम छोड़ दी है। लेकिन मुझे नहीं छोड़नी है! यह क्या कर रहे हो? इससे यहाँ तुम्हारी और मेरी क्या इज्जत रहेगी ? बन्द करो दरवाजा। यहाँ मेरे माँ-बाप नहीं हैं, जो उनके पास चली जाऊँगी।''

बैरिस्टर साहब का मुँह तो लाल ही बना रहा। पर वे लज्जित जरूर हुए। उन्हें अपनी क्रूरता पर पश्चाताप भी हुआ। इस घटना ने उनके आततायीपन को तो कम कर दिया, लेकिन स्वभाव-वैचित्र्य तो ज्यों का त्यों ही बना रहा।

एक दिन गांधीजी एक समाचार-पत्र लेकर घर आये। बोले : ''सुना, आज तक तो तू मेरी ब्याही हुई पत्नी थी। लेकिन अब तू मेरी ब्याहता पत्नी नहीं रही।'' बा सन्न रह गयीं। वाह रे भाग्य! समझ में नहीं आया कि यह नयी सनक क्या है।

''यह मैं अपनी बात नहीं कर रहा हूँ।'' मानो कस्तूरबाई के मन की बात भाँपकर गांधीजी ने अपनी बात स्पष्ट की। बोले : सरकार ने नया कानून बनाया है कि ईसाई विवाहों की तरह हमारा विवाह सरकारी अदालत के रजिस्टर में दर्ज नहीं हुआ है। अतः वह गैर-कानूनी माना जायेगा। अब हमें नये कानून के अनुसार विवाह करना होगा।''

कस्तूरबाई का चेहरा तमतमा उठा। बोली : ''जबान में हड्डी भी है या नहीं। जो मन में आया, कह चले।''

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

''मेरी जबान में तो है, पर सरकार की जबान में नहीं है।''

''आग लगे ऐसी सरकार में! इन निठल्लों को ऐसी ही बातें सूझती हैं।''

''ऐसी गालियों और शापों से न कोई जलता है, न मरता है। जो होना है, वह तो होकर ही रहता है।''

''क्या होकर ही रहता है? ऐसी असभ्य बातें भी कहीं कही जाती हैं?''

''लेकिन, वे तो प्रत्यक्ष रूप से असभ्य बातें करने लगे हैं न?''

''अजीब बात है। मैं तो क्या, कोई भी भारतीय स्त्री ऐसी बात सहन नहीं कर सकती।''

''मत करो सहन। करो सत्याग्रह और जाओ जेल।''

''अच्छा तो फिर सीधे-सीधे ही ऐसा क्यों नहीं कहते? मैं तैयार हूँ जेल जाने के लिए। बस, अब जेल जाना ही बाकी है। जेल के कष्ट सहन न कर सकी और मर गयी तो छुट्टी हुई।''

''यह बात तो मेरे मन की ही हो जायेगी।'' वे चिढ़ाते हुए बोले : ''यदि तू जेल में मर गयी तो देवी की तरह तेरी पूजा करूँगा और देख, तुझे वचन देता हूँ कि फिर विवाह न करूँगा।''

यदि शादी करना भी चाहोगे तो लड़की कौन देगा? और किसी ने अपनी लड़की दे भी दी तो विवाह देखने के लिए रहेगा कौन ?''

लेकिन कानून की मंशा एक बार समझ लेने के बाद कस्तूरबाई सचमुच सत्याग्रह करने के लिए तैयार हो गयीं। उनके साथ हजारों स्त्रियाँ जेल गयीं। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, गरीब, अमीर सभी प्रकार की स्त्रियाँ सत्याग्रह में शामिल हुईं।

अफ्रीका में रहने की अवधि समाप्त नहीं हुई, एक दिन और बीत गया। इस बीच भारत से आते समय जो बनावटी ठाट-बाट किया गया था, वह अब नहीं रहा था। अब फिनिक्स आश्रम के दूसरे छोर पर निवास था। आचार-विचार, रहन-सहन सब कुछ बदल गया था। स्त्रियों के जीवन में आनेवाले सारे संकट, सारे विघ्न-बीमारी, शल्य-क्रिया (ऑपरेशन) आदि समय-समय पर आये और चले गये थे। आसपास के लोगों से घनिष्ठता भी हो गयी थी। हठपूर्वक डॉक्टर के सामने ही खाट पर से उठाकर घर लाने का दुनिया से निराला काम भी गांधीजी ने किया था। पूरे मन से सेवा भी की। अब कस्तूरबाई का मन भी लग रहा था। प्रेम के चिह्न मन को भा रहे थे। मूलतः एक-दूसरे को उनका स्वभाव, वह जैसा भी था, अच्छा लग रहा था।

अब बच्चे बड़े हो रहे थे। पिता को उन्हें शिक्षित करने और अच्छी दिशा में मोड़ने का शौक था। अभी दो बच्चे तो बिलकुल छोटे थे। मणिलाल तो चुपचाप सुन लेता था, लेकिन हरिलाल को तीव्र इच्छा थी कि स्कूल जाय और पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बने। वह अड़कर बैठ जाता। झगड़े भी होते, लेकिन कुल मिलाकर गाड़ी अच्छी तरह चल रही थी।

अब तय हुआ कि अफ्रीका छोड़कर भारत जाना चाहिए। एक दृष्टि से यह खुशी की बात थी। भारत छोड़े कई वर्ष हो गये थे। अपने लोग, उनका स्नेह याद आ रहा था। लेकिन अफ्रीका के लोगों से भी बड़ी घनिष्ठता हो गयी थी। केलनबेक जैसे अंग्रेज साहब और उनकी पत्नी तो जेठ-जेठानी जैसे ही हो गये थे। पारसी रुस्तमजी, दादा अब्दुल्ला ये सब आत्मीय बन गये थे। सत्याग्रह के समय तीन महीने तक रात-दिन जो महिलाएँ जेल में साथ-साथ रही थीं, उनका भी एक-दूसरे से बड़ा स्नेह हो गया था। लेकिन एक बार जाने का निश्चय हो गया सो हो ही गया। उसमें अब कुछ परिवर्तन नहीं हो सकता था। वहाँ के लोग भी अब उनके स्वभाव को जान गये थे। निरुपाय-से होकर लोग उन्हें विदाई देने की तैयारी करने लगे।

अफ्रीका के लोगों के पास रुपया-पैसा बहुत था। उन्होंने तय किया कि विदाई बड़ी शान के साथ दी जाय। लोगों ने उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए कितनी ही बहुमूल्य वस्तुएँ और गहने उपहारस्वरूप दिये। लोगों ने उनकी सेवा और भलमनसाहत की जो कद्र की, उसे देखकर दोनों (पति-पत्नी) को बड़ा आनन्द हुआ। लोगों का प्रेम देखकर हृदय भर आया। घर के सभी लोगों को उपहार दिये गये थे और सभी उपहारों पर जिन्हें उपहार दिये गये थे उनके नाम के पर्चे लगे हुए थे। जिधर देखो उधर उपहार ही उपहार थे।

''यह प्रेम ही हमारी सम्पत्ति है। उसीको रखकर लोगों की वस्तुएँ उन्हीं को लौटा देनी चाहिए।'' गांधी ने कहा।

''यह क्या कहते हैं? यदि हमने इन्हें लौटा भी दिया तो क्या कोई इन्हें वापस लेना पसन्द करेगा ? क्या लोगों के मन को उससे चोट नहीं लगेगी?''

''मन दुखाये बिना काम कैसे करना यह बात बनियों को सिखाने की जरूरत नहीं पड़ती। मैं इन सबका एक ट्रस्ट बना देता हूँ। उस ट्रस्ट से लोकोपयोगी कार्य होंगे।''

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

गांधीजी की बुद्धि बड़ी तेज थी। कस्तूरबाई को कोई उत्तर न सूझा। वे चुपचाप उठीं और उपहारों के ढेर में से गहनों की एक पेटी अलग निकाल ली।

''यह क्या कर रही हो?''

''मैं अपनी वस्तुएँ ले रही हूँ। मुझे नहीं बनाना ट्रस्ट।''

''मेरी वस्तु? क्या मतलब?''

''मेरी वस्तु यानी वे वस्तुएँ जो लोगों ने मुझे भेंट दी हैं। क्या बैरिस्टर लोग ही कानून जानते हैं?''

''मुझे का मतलब है 'मेरी पत्नी को' दी हुई वस्तुएँ।''

''ठीक है। किन्तु मैंने तुम्हारी पत्नी के ही रूप में सही, लोगों की सेवा तो की है। यदि तुम सारे घरबार पर तुलसीपत्र रख दो तो वह तभी हो सकेगा न जबकि मैं भी उसे स्वीकार कर लूँ। क्या मैंने लोगों के लिए कम कष्ट सहन किये हैं?''

''सहे होंगे। लेकिन इन वस्तुओं पर न तो तेरा अधिकार है न मेरा।'' गांधीजी ने बड़े दृढ़ निश्चय के साथ कहा।

''क्या मैं इतना भी नहीं जानती? क्या तुमने कभी इन गहनों में से एक भी मेरे लिए खरीदा और पहनने को दिया? न हो मेरा अधिकार और अब तो इन्हें पहनने का भी मन नहीं है। लेकिन कल बहुएँ आयेंगी। उनके लिए चार गहने रख लेने में क्या बुराई है? तुम कहाँ उनके लिए गहने बनवानेवाले हो? मेरे और तुम्हारे पिताजी ने जो गहने बनवाये थे, वे भी तुमने रहने दिये?''

''यदि बहुएँ माँगेंगी तो मैं उन्हें गहने बनवा दूँगा। तुझे भी चाहिए गहने खरीद लाऊँगा। लेकिन यह तो दूसरों की सम्पत्ति है। इसका मोह अच्छा नहीं। यह तो शिवनिर्माल्य (शिव पर चढ़ाये हुए फूल, बेलपत्र आदि) है। ये अपने काम नहीं आ सकते।''

भरी हुई आँखों से कस्तूरबाई ने वे गहने दूर रख दिये।

''मुझे गहनों की क्या जरूरत? हाथों में चूड़ियाँ हैं। यही भगवान् की असीम दया है।''

वस्तुतः कस्तूरबाई के मन में गहनों की इच्छा ही नहीं रह गयी थी। उनके हाथ में काँच की सादी चूड़ियाँ थीं। लेकिन गांधीजी को वे भी चुभती थीं। सेठ जमनालालजी बजाज के परिवार ने गांधीजी की इस इच्छा को समझकर चूड़ियाँ भी छोड़ दी थीं। इनमें अग्रणी थीं जमनालालजी बजाज की पत्नी जानकीदेवी। एक दिन गांधीजी ने इस सम्बन्ध में जानकीदेवी से कहाः ''देखो, मुझमें तुम्हारी आस्था बा से भी अधिक है।''

''ऐसा क्या कहते हो बापूजी'' जानकीदेवी ने शर्माते हुए कहा।

''यही देखो न तुमने चूड़ियाँ निकाल दी हैं, बा ने नहीं निकाली हैं।''

''आप कितना ही चिढ़ाइये, जब तक प्राण रहेंगे मैं इन्हें नहीं निकालूँगी।'' कस्तूरबाई ने कहा।

बापू ने हँसते हुए कहा : ''इस बूढ़ी का चूड़ियों में कितना मन है।''

स्वदेश लौटकर वकालत का काम प्रारम्भ करने का कोई इरादा नहीं था। गांधीजी के पैरों में जैसे चक्र था और घुमक्कड़पन उनके पीछे लगा हुआ था। भारत में आते ही चम्पारण के मजदूरों की दुर्दशा ने उनका ध्यान आकर्षित किया। कस्तूरबाई ने भी चम्पारण जाकर उनकी हालत अपनी आँखों से देखी। गांधीजी ने उनकी सेवा में ही लगने का निश्चय किया। अब लोग गांधीजी को 'बापू' और कस्तूरबाई को 'बा' कहने लगे। गांधीजी भी उन्हें 'बा' ही कहते थे। वे उन्हें बा (माँ) ही मानते थे। गांधीजी चाहते थे कि मजदूर अपनी कष्ट-कथा साफ-साफ बतायें, ताकि समस्या की जड़ मालूम हो सके और उसका कोई हल निकाला जा सके। इस उद्देश्य से उन्होंने मजदूरों की गवाही लेना प्रारम्भ किया। निठल्ले गोरों से मजदूर डरते थे। गांधीजी उनको निर्भयतापूर्वक अपनी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करते थे। वहाँ मजदूर स्त्रियों की तो ऐसी बुरी स्थिति थी कि वह सीमा पार कर चुकी थी। बा और अवन्तीबाई ने स्त्रियों को घर से बाहर निकालकर गवाही देने के लिए समझाने का काम अपने ऊपर लिया। वे घर-घर जाकर स्त्रियों को समझाने लगीं।

साधारणतः भोले-भाले और अशिक्षित लोगों में अधिक दिलचस्पी दिखायी दे रही थी। लेकिन कितने ही घर ऐसे भी थे कि जहाँ जैसे ही ये दोनों पहुँचती थीं, अन्दर से कोई कहता—''कृपा करके बाहर ही रहिये।''

घर की महिलाओं में से कोई एक जैसे-तैसे बाहर झाँकती। इनकी बात सुनती और भरी हुई आँखों से सिर हिला देती। फिर झोपड़ी का दरवाजा बन्द हो जाता।

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

बा की समझ में नहीं आता था कि ऐसा क्यों होता है। वे इतना तो जान गयी थीं कि ये महिलाएँ असभ्य नहीं हैं। वे गरीब किसी के विरुद्ध भी नहीं हैं। वहाँ सबके मन में यही था कि ये लोग हमारे भले के लिए ही आये हैं। अतः बा के मन में बार-बार यही प्रश्न होता कि ऐसा क्यों होता है? ये स्त्रियाँ बाहर आकर हमसे मिलने-जुलने और बातचीत करने में संकोच क्यों करती हैं? बा को इस विचार से चैन नहीं पड़ता था। जब उन्होंने एक वृद्धा से इसका कारण पूछा तो उसने कहा : ''बा, आपके जैसी लक्ष्मी हमारे दरवाजे पर आये तो हम दरवाजा कैसे खोलें ? हमारी झोपड़ी में महिलाएँ तो तीन-चार हैं किन्तु साड़ी एक ही है और वह भी आधा शरीर ही ढँकने जैसी।''

दरिद्रता से बा की यह पहली मुलाकात थी। वे बहुत दुखी हुईं। उन्होंने बापू को उनकी करुण-कथा कह सुनायी। बापू की चिन्ता बढ़ गयी। वे इन गरीबों के शरीर ढँकने का उपाय सोचने लगे। जल्दी ही उनका ध्यान चरखे पर गया। चरखा तो सारे भारत में चलता था। लेकिन अंग्रेजों ने मिल चलाकर इस धन्धे को नष्ट कर दिया था। गांधीजी स्वयं चरखा चलाने लगे और गरीब ग्रामवासियों को भी चरखा चलाने के लिए कहा, ताकि वे स्वयं ही अपना कपड़ा तैयार कर सकें। बा भी चरखा चलाने लगीं। जब तक जीवित रहीं उन्होंने चरखा नहीं छोड़ा। उनके रहन-सहन में तो सादगी आ ही गयी थी, अब शरीर पर भी खादी आ गयी। प्रारम्भ में वह अवश्य मोटी प्रतीत हुई, पर धीरे-धीरे उसका मोटापन भी उनके मन को भाने लगा।

अब बापू ने कहीं घर बनाकर रहने का निश्चय किया। अहमदाबाद की साबरमती नदी का किनारा इसके लिए पसन्द किया गया। कहा जाता है कि इसी स्थान पर पहले कभी दधीचि ऋषि का आश्रम था। घास-फूँस की झोपाड़ियाँ तैयार की गयीं। उनके नाम भी बड़े अच्छे रखे गये। किसी का नाम हृदय-कुंज, किसी का नाम नन्दिनी और किसी का ऐसा ही और कुछ। बा की ननद रलियातबेन भी आश्रम में ही रहने आ गयीं। काका कालेलकर, नरहरि परीख और महादेव देसाई आदि के परिवार रहने लगे। महिलाओं में गंगाबेन, प्रेमाबाई, दुर्गाबेन जैसी अच्छी-अच्छी महिलाएँ भी आ गयीं। सब लोग नियमित चरखा चलाते थे, भोजनशाला में मिल-जुलकर काम करते थे और प्रतिदिन प्रातःकालीन एवं सायंकालीन प्रार्थनाओं में सम्मिलित होते थे। सारा कार्यक्रम बड़े सुख और सन्तोष के साथ चल रहा था। यह सब इतना अच्छा चल रहा था कि विचार आता, इसे कहीं नजर न लग जाय।

किन्तु नजर लगनी ही थी। एक दिन बापू एक हरिजन-परिवार को लेकर आये। तीन व्यक्ति थे-पति, पत्नी और एक छोटी बच्ची। यह परिवार भी अब आश्रम में सबके साथ रहनेवाला था। इस परिवार को आश्रम में रखने का मतलब था, सबका एक परिवार की तरह रहना। सभी आश्रमवासी यह बात तो मानते थे कि प्रत्येक के साथ, चाहे वह सवर्ण हो या अवर्ण, मानवीय व्यवहार होना चाहिए लेकिन किसी भी भंगी, चमार या बलाई को रसोईघर में ले जाकर उससे आटा गुँथवाना तो किसी के भी गले नहीं उतर रहा था। लेकिन बोले कौन? बापू उस परिवार के पक्षपाती थे। उनके सामने बोलने की तो गुंजाइश ही नहीं थी। इस नवागत हरिजन का इतना मान-सम्मान था, मानो वह सब आश्रमवासियों का दामाद ही हो। उससे किसी ने कुछ भी कहा नहीं कि वह पहुँचा बापू के पास। इसलिए उससे भी कुछ कहा नहीं जा सकता था। अधिकार के साथ सारा आक्रोश व्यक्त होता था बा के सामने। प्रत्येक व्यक्ति बड़ी चतुराई के साथ छूतछात निभाता था और बदनामी होती थी बा की। बापू के सामने शिकायतें भी अधिकतर बा की ही जाती थीं। संसार का तो सोचने का ही तरीका यह है कि पुरुष तो सबके सब बड़े उदार होते हैं उनका दिल बड़ा होता है। स्त्रियाँ ही तंगदिल या संकुचित-हृदय होती हैं। इधर यह हो-हल्ला, उधर ननद की चिड़चिड़ाहट। वह कहतीं : ''आखिर तुम भी यह भ्रष्टता कैसे चलने देती हो? स्त्रियों को भी अपना प्रभाव तो रखना ही चाहिए। पुरुष तो जो चाहे कह देते हैं। लेकिन क्या हममें बुद्धि नहीं है?'' बेचारी बा दो पाटों के बीच पिस रही थीं। बापू ने तो बीच का मेख को पकड़ रखा था। अतः उनका क्या बिगड़नेवाला था। पिसाई तो बा की ही होती थी। अन्ततः रलियातबेन यह कहकर चली गयीं कि अब तुम लोगों का मुँह नहीं देखूँगी। वे फिर अपने अन्तिम समय तक राजकोट में ही रहीं।

धीरे-धीरे आश्रमवासियों और बापू के उस लाडले हरिजन-परिवार में एक-दूसरे के साथ सामंजस्य बैठाने की आदतें पड़ने लगीं। बापू को भी काम के अधिकाधिक बढ़ते हुए बोझ के कारण बहुत कम समय मिल पाता था और फिर तो धीरे-धीरे सब कुछ ठीक हो गया। लेकिन प्रारम्भ के दिनों में, जब कि आश्रमवासी जाति-बहिस्कृत माने जाने लगे थे, कोठार-घर में आटे का ही घाटा हो गया था। जो लोग आश्रम को सहायता देते थे, उन्होंने हरिजन-परिवार के कारण सहायता देना ही बन्द कर दिया। बा और बापू के सामने समस्या खड़ी हुई कि भोजन क्या बनाया जाय? लेकिन बापू तो ठहरे अनासक्त कर्मयोगी। सच्चे अर्थों में चिन्तित तो बा ही हुईं।

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

लेकिन अब बा का स्वभाव भी बदलता जा रहा था। वे अब बापू की तरह ही दुनिया को देखने लगी थीं। अब उनके मन में दुखी-दर्दी और गरीब व्यक्तियों के लिए काम करनेवाले अपने पति के प्रति निष्ठा बढ़ती जा रही थी। वे अब स्वभावतः बापू के काम में समरस होती जा रही थीं। बापू सिद्धान्त बताते थे और बा वैसा जीवन जीकर बताती थीं। दोनों ही प्रयत्नपूर्वक ऐसा कर रहे हों, यह बात नहीं थी। यह सब तो अनायास होता जा रहा था।

एक बार ज्येष्ठ मास में एक महिला बापू से मिलने आयी। उसने दिनभर में एक घूँट पानी नहीं पिया। उस दिन बटपूर्णिमा थी। बोली : ''हम स्त्रियाँ वटपूर्णिमा के दिन भगवान् से यही प्रार्थना करती हैं कि जन्म-जन्मान्तर में हमें यही पति मिले।''

बापू बोले : ''मैं भी यहीं प्रार्थना करता हूँ।'' यह बात उन्होंने मजाक में नहीं कही थी। वे अनेक बार कहते हैं : ''बा ही है, जो इतना सहन करती हैं। मेरे जैसे आदमी के साथ जीवन बिताना बड़ा कठिन काम है। उनके अलावा कोई और होता तो मेरा निभाव होना कठिन था।''

हरिलाल अब बड़ा हो गया था। मणिलाल भी बड़ा हो गया था। दोनों के विवाह हो गये थे। उनका गृहस्थ जीवन प्रारम्भ हुआ। 'बा' अब 'बड़ी बा' या 'दादी माँ' हो गयी थीं। मणिलाल तो स्थायी रूप से दक्षिण अफ्रीका में ही रहने लगे थे। हरिलाल की पत्नी बीच में ही छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर स्वर्ग सिधार गयी थी।

हरिलाल का सारा असन्तोष फूट पड़ा। और वह घर छोड़कर चला गया। वह गया तो गया, पर ऐसा लगता था, वह बदला ले रहा हो। बापू जो-जो बातें करने के लिए मना करते थे, जैसे उन सब बातों को ही करने का उसने निश्चय कर लिया था। प्रतिदिन उसके सम्बन्ध में एक-न-एक बात सुनने को मिलती। बेचारी बा जब कोई आसपास न होता, आँसू पोंछ लेतीं। वह सबके सामने रो भी तो नहीं सकती थीं। नाती-पोतों को अपने पास रखकर मन को धीरज बँधाने का यत्न करती थीं। और बापू? वे तो जैसे अथाह सागर थे। उनके आँसू कौन देख सकता था?

अब आश्रम ही उनका परिवार हो गया था। बापू लोगों को इकट्ठा करते और बा उन्हें टिकाकर रखतीं। यही नित्य का क्रम हो गया था। अपने बच्चों और नाती-पोतों पर उनका विशेष स्नेह रहता था। यह कैसे कहा जा सकता है कि उन पर बापू का विशेष स्नेह नहीं था, लेकिन वे कहा करते थे कि किसी से विशेष और किसी से कम स्नेह न रखकर सबसे ही समान स्नेह रखते हैं। बा भी ऐसा ही प्रयत्न करती थीं। किन्तु कभी-कभी झड़प हो जाती। अब ऐसे अवसर कम ही आते थे। अब रुठने, गुस्सा होने और चिढ़ने-बकने के दिन बीत गये थे। उसके लिए न तो समय ही बचता था, न उम्र ही वैसी थी। फिर भी एक बार वैसा झगड़ा हो ही गया, लेकिन बिलकुल एकतरफा।

एक दिन सायंकालीन प्रार्थना के बाद बापू ने बड़ी गम्भीरता से कहा : ''बा ने आश्रम के लिए प्राप्त धनराशि, जो बारह या पन्द्रह रुपये थी, आश्रम में न जमा कराते हुए स्वयं ही खर्च कर दी। इस प्रकार उन्होंने अस्तेय-व्रत को भंग किया है।'' सीधे सादे शब्दों में उनके कहने का आशय यह था कि 'बा ने चोरी की है।'

प्रार्थना में 100 से अधिक व्यक्ति उपस्थित थे। बा भी उपस्थित थीं। इतनी बड़ी होने पर भी क्या बापू को बा के सम्बन्ध में ऐसा कहना चाहिए था? किसी को भी यह अच्छा नहीं लगा। वस्तुतः अच्छा लगने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता था। क्योंकि बा ने खर्च किये का मतलब यही था कि आश्रम के लिए ही खर्च किये। यह बात सूर्य के प्रकाश की भाँति खुली, स्वच्छ और सत्य थी। बा कुछ बोलीं नहीं। वे बिलकुल शान्त रहीं।

उस दिन बम्बई की एक विदुषी महिला मेहमान बनकर आश्रम में आयी थीं। प्रार्थना के समय वे भी उपस्थित थीं। उन्हें यह बात बहुत चूभी। उस समय तो वे कुछ नहीं बोलीं। बम्बई पहुँचकर उन्होंने एक पत्र लिखा। पत्र बा के नाम था। उन्होंने दुखी होकर लिखा था : ''मुझे आपसे बहुत सहानुभूति है। आपको कितना सहन करना पड़ता है? सत्य-अहिंसा के गीत गानेवाले बापू आपके सम्बन्ध में ऐसे उद्‌गार प्रकट करें ! उन्होंने जीवनभर आपको बहुत कष्ट दिया है। खाने-पीने और कपड़े-लत्ते जैसी साधारण बातों के लिए भी इतनी सख्ती।'' उस महिला ने बड़े भरे हुए हृदय से ऐसी ही बहुत-सी बातें लिखी थीं।

बा ने पत्र पढ़ा और उसका उत्तर लिखा : ''आपसे मेरा परिचय नहीं है। हम कभी एक-दूसरे से मिली भी नहीं। हमने कभी एक-दूसरे से अपने सुख-दुख की बात नहीं की। फिर आपसे किसने कहा कि मैं बहुत दुखी हूँ? यह सौभाग्य की ही बात है कि मुझे 'बापू' जैसे पति मिले हैं। उनके कारण मुझे संसार में सम्मान भी कम नहीं मिला है। मुझसे भूल हुई और उन्होंने उसे बता दिया तो इसमें विशेष बात क्या हुई? हर घर में ऐसा ही होता है। परन्तु इनका स्वभाव दूसरे लोगों से कुछ भिन्न है।

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

हमारी यह गृहस्थी भी कुछ ऐसी ही है कि जो कुछ होता है, वह दस आदमियों के सामने ही होता है। क्या हर घर में ऐसा नहीं होता?''

अब जीवन का संध्याकाल आ पहुँचा था। बा की आँखें उस दूसरे किनारे पर जा लगी थीं। उसी समय सन् 1942 का प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। व्यूह-रचना के पूर्व ही बापू गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें यह भी मालूम नहीं हो सका कि दूसरे किन-किन लोगों को गिरफ्तार किया गया है।

बा के लिए भी वारंट था। लेकिन वह एक अच्छे किस्म का वारंट था। उसमें लिखा था कि बा की इच्छा हो तो बापू के साथ रहें और इच्छा न हो तो बाहर रहें। सरकार की दृष्टि में गांधीजी को पत्नी के अतिरिक्त उनका दूसरा महत्त्व ही क्या था? उनका जेल में रहना क्या और आश्रम में रहना क्या? दोनों एक ही बात थी।

सदा की भाँति बा ने बापू से ही पूछा : ''मैं क्या करूँ?''

''तू बाहर ही रह। आज संध्या समय एक आम सभा है । तू मेरी ओर से उसमें शामिल होना।'' बापू ने कहा।

स्वतंत्रता के आन्दोलन में छाया की भाँति बापू के साथ रहनेवाली बा दस-बारह हजार स्त्रियों को जगा सकती थीं। वह हजारों किसानों के घर पहुँचकर अलख जगा सकती थीं। जेल-यात्रा तो प्रतिदिन की बात थी। ब्रिटिश सरकार को बा की इस शक्ति का कहाँ पता था? लेकिन बापू को तो उसका पता था। इसीलिए तो स्वतंत्रता-संग्राम के 'करो या मरो' के कठिन प्रसंग पर उन्होंने कहा था : ''तू मेरी ओर से जा।''

किन्तु सरकार ने बा को जाने नहीं दिया। उसने उन्हें बापू के पास आगाखाँ महल में ही पहुँचा दिया।

एक सप्ताह के भीतर ही बापू के दाहिने हाथ महादेवभाई देसाई चल बसे। इस समय लक्षण ही कुछ भिन्न दिखायी दे रहे थे। दो वर्ष बीत गये। नजरबन्दी समाप्त होने के कोई आसार ही दिखायी नहीं दे रहे थे। बा अंग्रेजी पढ़ रही थीं और भूगोल भी सीखती थीं। बापू उन्हें और मनु को साथ-साथ पढ़ाते थे। समय-समय पर परीक्षा भी लेते थे। बा बार-बार फेल हो जाती थीं।

बा का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। उन्हें यमराज देहली पर आकर बैठा हुआ दिखायी दे रहा था। लेकिन यमराज की चिन्ता दूर करके उनकी नजर किसी को खोज रही थी। वह बापू पर शुभ कामनाओं की वर्षा कर रही थी।

एक दिन उन्होंने मनु से अपनी पेटी मँगवायी। वह टीन की एक छोटी-सी पेटी थी। उसकी साँकल टूटी हुई थी। उसमें उनकी दो साड़ियाँ थीं। वे दोनों ही खादी की थीं। दोनों ही बापू के हाथ से कते हुए सूत की थीं। बस, वहीं बा की सम्पत्ति थी, इतना ही उनका परिग्रह था। ''मनूड़ी, मेरे मर जाने पर इसमें से एक साड़ी मुझे पहना देना और दूसरी साड़ी.....।'' रोग से जर्जर बनी हुई बा अपनी लाखों रुपये की सम्पत्ति को बाँट रही थीं। मनु बड़े ध्यान से सुनने लगी। वह बड़ी उत्सुकता से यह जानने की प्रतीक्षा कर रही थी कि साड़ी किसको दी जायेगी। बहुओं, नाती, पोती, रिश्तेदार इनकी कोई कमी नहीं थी।

''वह लक्ष्मी को देना। लड़की को ही उसको पाने का अधिकार है।'' बा अपने व्रत का उद्यापन कर रही थीं। यह लक्ष्मी कौन थी ? वह और कोई नहीं, साबरमती-आश्रम के उस हरिजन-परिवार की ही बालिका थी, जिसे बापू आश्रम में ले आये थे। बा ने उसे अपनी पुत्री ही मानकर उसका पालन-पोषण किया था। अन्त समय में अवर्ण-सवर्ण का भेद भी उनकी दृष्टि से ओझल हो गया था।

अन्त समय निकट आया जानकर सरकार ने बाहर रहनेवाले रिश्तेदारों को अन्दर आने की इजाजत दे दी। इस अवसर पर जो-जो लोग आये, वे उन सबसे प्रसन्न होकर बोलती रहीं। कुछ लोगों से उन्होंने कहा : ''ये मानते नहीं हैं। लेकिन मुझ जैसी बूढ़ी स्त्री की मौत तो एक उत्सव ही है। मेरे मरने पर तो लड्डुओं का बड़ा-सा भोज होना चाहिए। लेकिन यह इनको पसन्द आये तब न? न खुद लड्डू खाते हैं, न दूसरों को ही खिलाते हैं।'' बा को अपनी मृत्यु स्वयं अपनी आँखों से दिखायी दे रही थी और वे उसे देखकर ही स्वयंस्फूर्त होकर बातें कर रही थीं।

ठीक शिवरात्रि के पवित्र दिन वे चल बसीं। बापू की गोद में उनका सिर था और वे बड़ी शान्ति के साथ स्वर्ग सिधारती हुई धन्य हो रही थीं। संध्या समय थोड़े-से रिश्तेदारों और स्नेहियों की उपस्थिति में दाह-संस्कार हुआ। एक वृक्ष के नीचे तुलसीक्यारे के पास चिता रची गयी। राम-धुन गायी जा रही थी। खोये-खोये-से बापू भारी मन से उठे। वे तुलसीक्यारे के पास आये। उन्होंने तुलसीक्यारे और चिता पर फूल चढ़ाये और उनकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। देखते-ही-देखते चिता धू-धू करके जल उठी। बा का पार्थिव शरीर पंचतत्त्व में विलीन हो गया।

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com

दूसरे दिन कुछ स्वजन अस्थियाँ चुनने गये। बापू जब-तब जिन काँच की चूड़ियों को पहनने के लिए मना करते रहते थे, वे ही चूड़ियाँ आस्थियाँ चुनते समय सही-सलामत मिलीं। चिता की धू-धू करती हुई आग शरीर को राख करके भी चूड़ियों को भस्म नहीं कर पायी। बा प्रायः कहा करती थीं : ''मैं मरने पर भी इन चूड़ियों को नहीं निकालूँगी।'' मरने तक तो उन्होंने इन सौभाग्य-चिह्नों को नहीं ही निकाला, लेकिन उनकी आस्था और सतीत्व ने उन्हें आग में भी नहीं जलने दिया। अब चूड़ियाँ पहननेवाले हाथ तो नहीं रहे, पर चूड़ियाँ जैसी-की-तैसी बनी रहीं।

बा की मृत्यु पर बापू ने कहा था : ''बा का जबर्दस्त गुण था सहज ही मुझमें समा जाना। मैं नहीं जानता था कि यह गुण उनमें छिपा हुआ है। लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे बा खिलती गयीं और पुख्ता विचारों के साथ मुझमें यानी मेरे काम में समाती गयीं।

वह जगदम्बा थी।''

Online Edition downloaded from http://www.sssprakashan.com